Sampreshan
UGC CARE GROUP 1 ISSN:2347-2979
https://sampreshan.info/

Vol. 17, Issue No. 2, June 2024

श्रीमद्भगवद्गीता एवं शिवसंहिता में वर्णित कर्मयोग की तुलना

सौदामिनी गुप्ता, पीएच.डी. स्कॉलर (योग), सैम ग्लोबल यूनिवर्सिटी भोपाल, मध्यप्रदेश
डॉ. शशिकांत मणि त्रिपाठी, पर्यवेक्षक एवं एसोसिएट प्राध्यापक, योग विभाग, सैम ग्लोबल यूनिवर्सिटी भोपाल, मध्यप्रदेश

सारांश

श्रीमद्भगवद्गीता एवं शिवसंहिता दोनों ही योगपरक ग्रंथ हैं। दोनों में ही योग के विभिन्न आयामों का विस्तृत वर्णन हुआ है। श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुन को दिए गए योग के उपदेश का वर्णन किया गया है। इसमें अठारह अध्याय हैं और अठारह प्रकार के योग का वर्णन मिलता है, प्रत्येक अध्याय में एक प्रकार के योग वर्णन है। पर इन अठारह प्रकार के योग में प्रमुख रूप से तीन प्रकार के योग हैं - ज्ञानयोग, कर्मयोग एवं भक्तियोग। वहीं शिवसंहिता में भगवान शिव द्वारा माता पार्वती को दिये गये योग के उपदेश का वर्णन है। इसमें पाँच पटल हैं तथा इसमें चार प्रकार के योग का वर्णन मिलता है - लययोग, राजयोग, हठयोग और मंत्रयोग। इसमें ज्ञान एवं कर्म का भी विस्तृत वर्णन मिलता है।

कूट शब्द :- 'कर्म', 'कर्मयोग', 'शिवसंहिता', 'श्रीमद्भगवद्गीता'।

प्रस्तावना

श्रीमद्भगवद्गीता निष्काम कर्मयोग का महत्वपूर्ण ग्रंथ है। इसमें भगवान श्रीकृष्ण ने कर्मयोग की बहुत ही विशद व्याख्या की है। कोई भी अन्य ग्रंथ कर्मयोग की इतनी सरल और सूक्ष्म व्याख्या नहीं कर सकता। कर्मयोग के अभ्यास से कर्म-संस्कारों का नाश होता है। किसी भी भले या बुरे कर्म का फल मनुष्य के संस्कारों में बीज रूप में जमा होते रहते हैं। जो समय आने पर फल देते हैं। इन कर्म-संस्कारों का नाश कर्मयोग के अभ्यास द्वारा निश्चित रूप से किया जा सकता है। किसी भी भावना को उसके प्रतिकूल भावना से नष्ट किया जा सकता है। जिस प्रकार घृणा को प्रेम से नष्ट किया जा सकता है। वास्तव में कर्मों की जड़ उसके अज्ञान और बहिर्मुखता में है। इसलिए जब मनुष्य आत्मज्ञान के लिए प्रयास करता है और अंतर्मुखी होने का प्रयत्न करता है, तब उसके कर्म-संस्कार अपने-आप नष्ट हो जाते हैं। भगवान श्रीकृष्ण ने श्रीमद्भगवद्गीता में कहा है - ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं[1] अर्थात ज्ञानाग्नि सभी कर्मों को भस्म कर देती है। कुछ समय के लिए किया गया कर्मयोग का अभ्यास भी अनेक जन्मों के अशुभ कर्मों के फल को नष्ट करने में समर्थ होता है।

शिवसंहिता में भगवान शिव ने भी निष्काम कर्म करने का उपदेश दिया है। क्योंकि सकाम कर्म अच्छा होगा या बुरा होगा, पुण्यकर्म होगा या पापकर्म होगा, उसके अनुसार ही उसका फल सुख होगा या दुख, स्वर्ग होगा या नर्क। जिसे भोगना अनिवार्य होगा। जिसके लिए बार - बार शरीर धारण करना पड़ेगा। मनुष्य शरीर मिला तो फिर से सकाम कर्म और पुण्य - पाप का चक्र चलेगा। यही क्रिया जन्म-जन्मांतर तक चलती रहेगी। इसलिए भगवान शिव कहते हैं कि समस्त सकाम कर्मों को त्यागकर, निष्काम कर्म अपनाकर योग में प्रवृत्त होना चाहिए।

श्रीमद्भगवद्गीता में कर्म का स्वरूप

भगवान श्रीकृष्ण ने श्रीमद्भगवद्गीता में कर्मयोग का उपदेश देने के साथ ही कर्म के विषय में भी विस्तार से बताया है। भगवान कर्म के विषय में बताते हुए श्रीमद्भगवद्गीता के चौथे अध्याय में अर्जुन से कहते हैं -

कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यं च विकर्मण:।
अकर्मणश्च बोद्धव्यं गहना कर्मणो गति:॥[2]

अर्थात् हे पार्थ! कर्म का स्वरूप भी जानना चाहिये और अकर्म का स्वरूप भी जानना चाहिये तथा विकर्म का स्वरूप भी जानना चाहिये; क्योंकि कर्म की गति गहन है।

भगवान ने अर्जुन को कर्मयोग का उपदेश देने के साथ ही कर्म के स्वरूप को भी स्पष्ट करते हुए कर्म के तीन प्रकार बताये हैं - कर्म, अकर्म और विकर्म।

कर्म - अर्थात शास्त्र के अनुकूल किये गये कर्म, वेदों के अनुकूल किये गये कर्म।

अकर्म - अकर्म का अर्थ है कर्म का अभाव यानि तुष्णी अभाव।

विकर्म - अर्थात जो निषिद्ध कर्म है, पाप कर्म है, वह विकर्म है।

भगवान ने कर्म, अकर्म और विकर्म को बताने के साथ ही नियत कर्म और कर्तव्य कर्म को भी करने का उपदेश दिया है।

कर्म न करने की अपेक्षा कर्मों के करने को श्रेष्ठ तथा कर्मों के बिना शरीर निर्वाह असम्भव बतलाकर नि:स्वार्थ और अनासक्त भाव से विहित कर्म करने की आज्ञा अर्जुन के माध्यम से समस्त प्राणियों को देते हुए भगवान विश्वम्भर श्रीमद्भगवद्गीता के तीसरे अध्याय में अपने प्रेममय स्वर में कहते हैं -

नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मण:।
शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्धयेदकर्मण:॥
यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धन:।
तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसङ्ग समाचर॥[3]

अर्थात हे अर्जुन! तू शास्त्रविहित कर्तव्यकर्म कर; क्योंकि कर्म न करने की अपेक्षा कर्म करना श्रेष्ठ है तथा कर्म न करने से तेरा शरीर-निर्वाह भी नहीं सिद्ध होगा। यज्ञ के निमित्त किये जाने वाले कर्मों से अतिरिक्त दूसरे कर्मों में लगा हुआ मनुष्य समुदाय कर्मों से बंधता है। इसलिए हे अर्जुन! तू आसक्ति से रहित होकर उस यज्ञ के निमित्त ही भलीभाँति कर्तव्य कर्म कर।

भगवान् श्रीकृष्ण ने श्रीमद्भागवद्गीता के अठारहवें अध्याय में अर्जुन को कर्म के तीन प्रकार बताए हैं –**1. सात्विक कर्म :-** फल प्राप्ति की इच्छा न रखने वाला मनुष्य अपने मन में किसी के प्रति किसी भी प्रकार द्वेष भाव न रखकर बिना आसक्ति के शास्त्र के अनुकूल अपना नियत कर्म करता है उसे सात्विक कर्म कहते हैं। अर्जुन को सात्विक कर्म के लक्षण बताते हुए भगवान् विश्वंभर अपने ज्ञानमय स्वर में कहते हैं -

नियतं सङ्गरहितमरागद्वेषत: कृतम।
अफलप्रेप्सुना कर्म यत्तत्सात्त्विकमुच्यते ॥[4]

अर्थात् जो कर्म शास्त्रविधि से नियत किया हुआ और कर्तापन के अभिमान से रहित हो तथा फल न चाहने वाले पुरुष द्वारा बिना राग-द्वेष के किया गया हो - वह सात्त्विक कहा जाता है॥

2. राजसिक कर्म :- जब मनुष्य के कर्म फल की आसक्ति से बंधे होते हैं तथा अहंकार से युक्त होते हैं वे राजसिक कर्म कहलाते हैं। राजसिक कर्म के लक्षण अर्जुन को बताते हुए भगवान् केशव अपने आनंदमय स्वर में कहते हैं -

यत्तु कामेप्सुना कर्म साहङ्कारेण वा पुनः।
क्रियते बहुलायासं तद्राजसमुदाहृतम् ॥[5]

अर्थात् परन्तु जो कर्म बहुत परिश्रम से युक्त होता है तथा भोगों को चाहने वाले पुरुष द्वारा या अहंकारयुक्त पुरुष द्वारा किया जाता है, वह कर्म राजस कहा गया है॥

3. तामसिक कर्म :- जब मनुष्य मोह से ग्रस्त होकर उचित-अनुचित में अंतर समझे बिना ही कर्म करता है तो वह कर्म तामसिक कर्म है। तामसिक कर्म के लक्षण बताते हुए अर्जुन से भगवान् गोविन्द अपनी सुमधुर वाणी में कहते हैं -

अनुबन्धं क्षयं हिंसामनवेक्ष्य च पौरुषम्।
मोहादारभ्यते कर्म यत्तत्तामसमुच्यते ॥[6]

अर्थात् जो कर्म परिणाम, हानि, हिंसा और सामर्थ्य को न विचारकर केवल अज्ञान से आरंभ किया जाता है, वह तामस कहा जाता है।

इन तीन लक्षणों से युक्त कर्मों में सभी प्रकार के कर्म आ जाते हैं। सात्विक कर्म को ही निष्काम कर्म कहा जाता है, निष्काम कर्म ही कर्मयोग है। श्रीमद्भागवद्गीता में कर्मयोग को ही सर्वश्रेष्ठ माना गया है।

श्रीमद्भगवद्गीता में कर्मयोग

श्रीमद्भगवद्गीता में कर्मयोग के प्रत्येक पहलू पर विस्तृत व्याख्या की गई है। इसमें भगवान श्रीकृष्ण ने एक श्लोक में ही संपूर्ण कर्मयोग को विस्तार से बता दिया है -

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भुर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि॥[7]

अर्थात् तेरा कर्म करने में अधिकार है इनके फलों में नही। तू कर्म के फल के प्रति आसक्त न हो या कर्म न करने के प्रति प्रेरित न हो।

कर्मयोग के परिपेक्ष्य में श्रीमद्भगवद्गीता के इस महत्वपूर्ण श्लोक का बड़ा ही महत्वपूर्ण स्थान है। भगवान श्रीकृष्ण ने बहुत ही कम शब्दों में कर्मयोग को परिभाषित कर दिया है। प्रत्येक पद में बहुत ही गहन अर्थ छिपा है। भगवान श्लोक के पहले भाग में कहते हैं कि 'कर्मण्येवाधिकारस्ते' अर्थात कर्म करने में तेरा अधिकार है। मनुष्य कर्म करने में स्वतंत्र है। किसी भी प्रकार का कर्म करने में उसे कोई नहीं रोक सकता। वह कर्म पाप कर्म भी हो सकता है और पुण्य कर्म भी। वह जो चाहे कर्म कर सकता है, उसे कोई भी नहीं रोकेगा।

श्लोक के दूसरे भाग में भगवान कहते हैं कि 'मा फलेषु कदाचन' अर्थात इनके फलों में तेरा कोई अधिकार नहीं है। मनुष्य जो भी कर्म करेगा उसी के अनुरूप ही फल मिलेगा। शुभ कर्म का फल शुभ तथा अशुभ कर्म का फल अशुभ मिलता है। पुण्य कर्म का फल स्वर्ग और पाप कर्म का फल नर्क मिलता है। अत: कर्म तो मनुष्य अपने अनुसार कर सकता है पर उस कर्म का फल वह अपने अनुसार नहीं पा सकता। यदि ऐसा होता तो हर मनुष्य पाप कर्म में संलग्न हो जाता और उसका फल वह स्वर्ग, अशुभ कर्म का फल शुभ लेता। परंतु ऐसा नहीं होता। क्योंकि

मनुष्य कर्म करने में तो स्वतंत्र है परंतु उसका फल पाने में परतंत्र है। इसी प्रकार दैनिक जीवन में यह भी देखा जाता है कि एक ही परिस्थिति और एक ही प्रकार के साधन के उपयोग से कर्म करने वाले मनुष्य भिन्न-भिन्न प्रकार से फल पाते हैं। किसी को लाभ मिलता है तो किसी को हानि। कोई सफल होता है तो कोई असफल।

श्लोक का तीसरा भाग है 'मा कर्मफलहेतुर्भु:' अर्थात कर्म के फल के प्रति आसक्त मत हो। इस जगत् में सारा खेल तो इस आसक्ति का ही है। इसलिए भगवान कहते हैं कि कर्म फल के लिए किसी प्रकार की आसक्ति मत रखो। क्योंकि कर्मफल में आसक्ति होने पर वह कर्म बंधन बन जाएगा और मनुष्य जन्म-जन्मांतर के चक्र में फंस जाएगा। इसीलिए भगवान आसक्ति से दूर रहने को कहते हैं। इसी निरासक्ति को ही निष्कामता कहते हैं। श्लोक का चौथा और अंतिम भाग है 'मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि' अर्थात अकर्म में भी प्रेरित न हो। अकर्म अर्थात कर्म न करना। भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन को समझाते हुए कहते हैं कि तुम यह मत सोचो कि कौन इस पाप-पुण्य कर्म के चक्कर में पड़े, इसलिए कर्म ही न करूँ तो ठीक रहेगा। तुम्हें कर्म तो करना ही पड़ेगा। पर वह कर्म निष्काम कर्म होना चाहिए। तभी वह कर्म बंधन नहीं बनेगा।

शिवसंहिता में कर्म का स्वरूप

शिवसंहिता में भगवान शिव ने कर्म की विशद व्याख्या की है। शिवसंहिता के प्रथम पटल में भगवान् शिव ने माता पार्वती को कर्म का उपदेश देते हुए कर्म के दो प्रकार बताये हैं :-

द्विविधं कर्मकाण्डम स्यान्निषेधविधिपूर्वकं।
निषिद्धकर्मकरणे पापं भवति निश्चितं।
विधिना कर्मकरणे पुण्यं भवति निश्चितं ॥[8]

अर्थात् निषेध (अविहित) एवं विधि (विहित) पूर्वक होने से कर्मकांड दो प्रकार का होता है। निषिद्ध (अविहित) कर्म करने पर निश्चित रूप से पाप होता है तथा विधिपूर्वक (विहित) कर्म करने पर निश्चित रूप से पुण्य होता है।

भगवान शिव ने कर्म के मुख्यत: दो प्रकार बताए हैं - विहित कर्म एवं अविहित कर्म। विहित कर्म को शास्त्र के अनुकूल कर्म माना जाता है तथा इसे करने पर पुण्य की प्राप्ति होती है। अविहित कर्म को शास्त्र के प्रतिकूल माना जाता है तथा इसे करने पर पाप होता है। विहित कर्म के भी तीन प्रकार बताये हैं - नित्य, नैमित्तिक एवं काम्य कर्म। इनके बारे में विस्तार से बताते हुए भगवान शिव माता पार्वती से कहते हैं -

त्रिविधो विधिकूट: स्यान्नित्यनैमित्यकाम्यत:।
नित्येऽकृते किल्बिषं स्यात्काम्ये नैमित्तिके फलम् ॥[9]

अर्थात् विधिकर्म 'नित्य', 'नैमित्तिक' और काम्य भेद से तीन प्रकार के होते हैं। 'नित्य' (स्नान संध्या पूजन आदि) कर्म न करने से पाप होता है तथा 'काम्य' (फल की इच्छा से किए गए) कर्म एवं 'नैमित्तिक' विशेष व्रत पर्व आदि कर्म करने से फल की प्राप्ति होती है।

इस प्रकार भगवान शिव ने शिवसंहिता में कर्म के दो प्रकार बताए हैं - विहित कर्म एवं अविहित कर्म।

1. विहित कर्म या विधि कर्म :- विहित कर्म अर्थात शुभ कर्म, वेदों के अनुकूल कर्म। जैसे यज्ञ, दान, तप आदि विहित कर्म हैं। विहित कर्म के भी तीन प्रकार बताये हैं - नित्य कर्म, नैमित्तिक कर्म और काम्य कर्म।

(i) नित्य कर्म :- स्नान करना, भोजन करना, चलना, सोना, संध्या पूजन करना आदि दैनिक जीवन के कार्य नित्य कर्म हैं। इन नित्य कर्मों को न करने से पाप का भागी बनना पड़ता है।

(ii) नैमित्तिक कर्म :- नैमित्तिक कर्म से आशय है - किसी विशेष पर्व, त्योहार, व्रत इत्यादि कर्म करना। इन कर्मों को करने से फल की प्राप्ति होती है।

(iii) काम्य कर्म :- काम्य कर्म अर्थात किसी फल की इच्छा से किए गये कर्म। काम्य कर्मों को करने से भी फल की प्रप्ति होति है।

2. अविहित कर्म या निषेध कर्म :- वेदों के प्रतिकूल कर्म, अशुभ कर्म को ही अविहित या निषेध कर्म कहते हैं। जैसे चोरी, हिंसा, व्यभिचार आदि कर्म। अविहित कर्म से समाज में अराजकता फैलता है। अविहित कर्म करने से पाप होता है।

भगवान शिव ने शिवसंहिता के प्रथम पटल में ही एक अन्य श्लोक में कर्म के अन्य दो प्रकार बताए हैं -

तत्कर्म कल्पकैः प्रोक्तं पुण्यं पापमिति द्विधा ॥[10]

अर्थात् कर्म सिद्धांत के आचार्यों के द्वारा वह कर्म पुण्य एवं पाप - दो प्रकार का बताया गया है।

उपरोक्त दोनों श्लोक में कर्म के प्रकार में अनिश्चितता प्रतीत हो रहा है। परंतु ऐसा नहीं है। विहित कर्म को ही शुभ कर्म या पुण्य कर्म कहते हैं तथा अविहित कर्म को अशुभ कर्म या पाप कर्म भी कहते हैं। भगवान शिव कहते हैं कि पुण्य कर्म करने से स्वर्ग की प्राप्ति होती है तथा पाप कर्म करने से नरक की प्राप्ति होती है। पुण्य कर्म करने से सुख मिलता है तथा पाप कर्म करने से दुख मिलता है। पुण्य कर्म और पाप कर्म को स्वर्ग और नर्क कि संज्ञा देकर आशुतोष शिव अपनी शिष्या पार्वती से प्रेमपूर्ण स्वर में कहते हैं -

पुण्य कर्मणि वै स्वर्गो नरकः पापकर्मणि।
कर्मबंधनमयी सृष्टिर्नान्यथा भवति ध्रुवम् ॥[11]

अर्थात् निश्चय ही पुण्यकर्म से स्वर्ग की प्राप्ति होती है और पापकर्म से नरक की। समस्त संसार कर्मों के नियम से परिचालित है, इस नियम के विपरीत कुछ भी नहीं, यह सुनिश्चित है।

भगवान शिव कहते हैं कि पाप कर्म करने से दुख और पुण्य कर्म करने से सुख का परिणाम बताते हुए माता पार्वती से कहते हैं -

पापकर्मवशाद् दुःखं पुण्यकर्मवशात् सुखम्।
तस्मात्सुखार्थी विविधं पुण्यं प्रकुरुते ध्रुवम् ॥[12]

अर्थात पाप कर्मों के फलस्वरूप दु:ख एवं पुण्य कर्मों के कारण सुख उत्पन्न होता है। इसी कारण सुख चाहने वाला प्राणी निश्चित रूप से अनेक प्रकार के पुण्य कर्म करता है।

शिवसंहिता में कर्मयोग

शिवसंहिता में भगवान शिव ने सभी प्रकार के नित्य तथा नैमित्तिक कर्म में आसक्ति का त्याग करके ही योग में प्रवृत्त होने के लिए कहा है। कर्म शरीर का धर्म है और शरीर के रहते कोई न कोई कर्म अवश्य होता रहता है। जैसे भगवन श्रीकृष्ण ने श्रीमद्भागवद्गीता में बताया है, इसी प्रकार का मत शिवसंहिता में भी भगवान् शिव ने दिया है। प्रत्येक मनुष्य को कर्म तो करना ही पड़ता है, लेकिन कर्मों की गति, फलासक्ति आदि का भान हो और

निष्काम भाव से कार्य संपादन हो तो वह कर्मयोग होता है। कर्मयोग का उपदेश देते हुए शिवसंहिता के प्रथम पटल में भगवान शिव माता पार्वती से कहते हैं -

इहामुत्र फलद्वेषी सफलं कर्म सन्त्येजेत्।
नित्यनैमित्तिकं संगं व्यक्तवा योगे प्रवर्तते ॥[13]

अर्थात् ऐहिक एवं पारलौकिक भोग्य फलों के अनिच्छुक साधक को समस्त सकाम (फल की आकांक्षा से युक्त) कर्मों का त्याग कर देना चाहिए। नित्य एवं नैमित्तिक कर्मों के प्रति आसक्ति का त्याग करने पर ही योग में प्रवृत्त होना सम्भव है।

प्रस्तुत श्लोक में भगवान शिव ने कर्मयोग के परिप्रेक्ष्य में यह बताया है कि जो मनुष्य अपने वर्तमान जीवन में एवं आने वाले अगले कई जन्मों तक कर्मों के भोग को भोगना नहीं चाहता है, तो उसे अपने वे समस्त कर्म जो किसी फल की कामना से किए जाते हैं, उनका त्याग कर देना चाहिए। साथ ही वे कर्म जो नित्य एवं नैमित्तिक कर्म हैं, जिन्हें करना अनिवार्य है, ऐसे कर्मों में भी आसक्ति का त्याग कर देना चाहिए। तभी मनुष्य कर्मयोग में प्रवृत्त हो सकता है। कर्मयोग में प्रवृत्त मनुष्य को पापकर्म एवं पुण्यकर्म के फल का भी त्याग कर देना चाहिये। इस तरह भगवान् शिव द्वारा कर्मयोग के परिप्रेक्ष्य में पुण्य-अपुण्य, सुख-दुःख इत्यादि फलाफल के त्यागरूप निष्काम कर्मयोग के स्वरूप को प्रस्तुत किया है।

उपसंहार

मनुष्य अपने स्वभाव के अनुसार ही कर्म करता है। जैसी उसकी प्रकृति होती है वैसे ही उसके कर्म होते हैं। इंद्रियाँ हीं मनुष्य को विभिन्न प्रकार के कर्म करने पर विवश करती हैं। भगवान श्रीकृष्ण ने श्रीमद्भगवद्गीता में अर्जुन के माध्यम से विश्व के समस्त प्राणियों को राग-द्वेष से रहित होकर कर्म करने के लिए कहा है। क्योंकि कर्म-सिद्धान्त का यह सामान्य नियम है, हम जैसा कर्म करते हैं वैसा ही फल पाते हैं। शुभ कर्मों का फल शुभ तथा अशुभ कर्मों का फल अशुभ होता है। इसी तरह सुख और दुःख भी क्रमशः हमारे शुभ और अशुभ कर्मों के फल ही माने जाते हैं। भगवान शिव ने भी शिवसंहिता में बताया है कि पुण्य कर्म करने से स्वर्ग की प्राप्ति होती है तथा पाप कर्म करने से नर्क की प्राप्ति होती है। व्यक्ति को इसी जीवन में स्वर्ग और नरक दोनों का अनुभव होता है, जो व्यक्ति जैसा कार्य करता है, वैसा ही फल पाता है। इसलिए अपने जीवन को अच्छा और महान बनाने के लिए कर्मयोग को अपनाना चाहिए। इसी धरती पर स्वर्ग भी है और नर्क भी। यह व्यक्ति अपने कर्मों से स्वयं ही तैयार करता है।

संदर्भ सूची

1. श्रीमद्भगवद्गीता 4.19
2. श्रीमद्भगवद्गीता 4.17
3. श्रीमद्भगवद्गीता 3.8 - 3.9
4. श्रीमद्भगवद्गीता 18.23
5. श्रीमद्भगवद्गीता 18.24
6. श्रीमद्भगवद्गीता 18.25

7. श्रीमद्भगवद्गीता 2.47
8. शिवसंहिता 1.21
9. शिवसंहिता 1.22
10. शिवसंहिता 1.29
11. शिवसंहिता 1.24
12. शिवसंहिता 1.26
13. शिवसंहिता 1.30